# ओमप्रकाश वाल्मीकि की रचनाधर्मिता और दलित साहित्य

**बीज शब्द :** ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित लेखन, हिंदी साहित्य, जूठन, मराठी दलित साहित्य, अस्मिता मूलक विमर्श, सामाजिक आन्दोलन, दलित चेतना।

ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net

A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research

शोध संचयन

*सुप्रसिद्ध साहित्यकार और आलोचक ओमप्रकाश वाल्मीकि की सर्जनात्मकता का मुख्य सरोकार समतापरक तथा न्याय आधारित समाज निर्माण है। वे आज हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनकी रचनाधर्मिता मानवता का मानस रचती है। यह आलेख ओमप्रकाश वाल्मीकि के रचनाकर्म एवं उनकी वैचारिकी की पड़ताल करता है।*

**डॉ. राम चंद्र**
भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जे.एन.यू., नई दिल्ली-110067

हिंदी साहित्य की संवृद्ध एवं सुदृढ़ परंपरा के बावजूद 'हिंदी दलित साहित्य' पदबंध प्रकाश में क्यों आया? यह एक सार्थक प्रश्न है, जिस पर सम्यक विचार किया जाना चाहिए। यद्यपि 'दलित साहित्य' पदबंध सर्वप्रथम मराठी भाषा-साहित्य में प्रयुक्त हुआ, जिसके मूल में फुले और डॉ. अंबेडकर का चिंतन एवं उनका सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन है। सदियों से असमानता, अन्याय, अपमान, अनादर, घृणा एवं हिंसा के शिकार तथा अधिकारविहीन कर दिए गए समुदायों का शोषण एवं दमन करने वाली हिंदू सामाजिक व्यवस्था को प्रश्नांकित करते हुए समता, स्वतंत्रता, मैत्री एवं बंधुता के लिए समर्पित मुक्तिकामी आंदोलनों से प्रेरणा लेते हुए ही मराठी दलित साहित्य की पृष्ठभूमि बनी। मराठी दलित साहित्य को स्थापित और गतिशील बनाने में 'दलित पैंथर आन्दोलन' की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। ऐतिहासिक रूप से शोषण और दमन के शिकार भुक्तभोगी समुदायों के शिक्षितों द्वारा खासतौर से स्वतंत्र भारत में संवैधानिक व्यवस्था स्थापित होने के बाद साहित्य और ज्ञान के अन्य अनुशासनों में 'स्व' और उपेक्षित समुदायों के 'वजूद' की तलाश करते हुए ही दलित साहित्य आंदोलन प्रकाश में आया। यह आंदोलन अंबेडकरवादी वैचारिकी पर केंद्रित है। इस परिवर्तनकामी साहित्यिक आंदोलन का वैचारिक प्रसार भारत के अन्य भाषा साहित्य में भी हुआ। दलित साहित्य आंदोलन ने दलित का आशय, दलित चेतना और दलित साहित्य की अवधारणा को सुस्पष्ट करते हुए परंपरागत स्थापित साहित्य और उसके मानकों-मानदंडों पर सवाल उठाया। अंबेडकरवादी वैचारिकी पर आधारित यह प्रश्न भारत के अन्य भाषा क्षेत्रों में भी मुखर हुआ। हिंदी का दलित साहित्य आंदोलन भी इसी की परिणति है। यद्यपि बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों से ही हिंदी में दलितों द्वारा दलित जीवन पर लेखन होता रहा है। अछूतानंद का आंदोलन और उनका लेखन इसका एक सशक्त प्रमाण है। अनुसंधानों द्वारा दलित कवियों और लेखकों की हिंदी में एक लंबी परंपरा प्रकाश में आयी है, परंतु वे रचनाकार अंबेडकरवादी वैचारिकी से संबद्ध नहीं रहे। इसकी एक मात्र वजह फुले-अंबेडकरवादी विचारधारा का हिंदी क्षेत्र में देर से आना है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की रचनाधर्मिता के संदर्भ में एक महत्पूर्ण तथ्य यह है कि उनका मराठी भाषा-साहित्य के अंबेडकरवादी आंदोलनों से लंबा और गहरा सानिध्य रहा है। केंद्रीय राजकीय सेवा में नौकरी के दौरान ओमप्रकाश वाल्मीकि का अपनी युवावस्था में महाराष्ट्र के चंद्रपूर में अंबेडकरवादी दलित आंदोलनों से गहरा जुड़ाव रहा। उन आंदोलनों में सक्रिय हिस्सेदारी करते हुए ही ओमप्रकाश वाल्मीकि

की रचनात्मकता ने आकार लिया। इसीलिए उनकी रचनाधर्मिता ज्यादा मुखर और सुस्पष्ट है। वे हिंदी साहित्य के अधूरे, अनछुए और अनुत्तरित प्रश्नों को दलित साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। इसको हिंदी भाषा-साहित्य के विकास में उनके अमूल्य योगदान के रूप में देखा जाना चाहिए। अंबेडकरवादी आंदोलनों के स्थूल प्रश्नों को वे सर्जनात्मक रूप प्रदान करते हैं, जिसमें समतापरक भारत का सपना है। इसी आलोक में उनके संपूर्ण लेखन का विवेचन अपेक्षित है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने हिंदी साहित्य की शाश्वतता और स्वायत्तता के समक्ष अपनी रचनाधर्मिता के माध्यम से चुनौती पेश की है और यह बताने की ईमानदार कोशिश की है कि हिंदी साहित्य-सत्ता में सभी वर्ग, जाति और धर्म के लोगों की चिंता एवं सहभागिता नहीं रही है। इस परिप्रेक्ष्य में दलित साहित्य की वैचारिकी तथा पृष्ठभूमि को समझना अपरिहार्य है, तभी दलित यातना और आक्रोश के सर्जनात्मक रूपांतरण से भली-भांति परिचित हुआ जा सकता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि का रचना-संसार भारतीय सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, दर्शन एवं साहित्य की समीक्षा-आलोचना से निर्मित हुआ है। इनके यहां सर्जनात्मक लेखन और आलोचना की निर्मिति का उत्स एक ही है। इनका संपूर्ण लेखन एवं चिंतन वर्चस्वशाली सभ्यता एवं संस्कृति के हजारों साल के इतिहास, संस्कृति, धर्म एवं साहित्य का आलोचनात्मक विवेक प्रस्तुत करता है। साहित्य की सभी विधाओं में यह स्वरूप देखा जा सकता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता अतीत और वर्तमान की सामाजिक एवं सांस्कृतिक आलोचना है। इनकी रचना-दृष्टि झूठ एवं पाखंड पर गहरी चोट करती है तथा तार्किक ढंग से सच को साहित्य एवं समाज के समक्ष उजागर करती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि का स्वानुभव सामुदायिक-सामूहिक अनुभव है। उनके लेखन का मुख्य सरोकार 'मुख्यधारा' और हाशिए के फासले को पाटना है-

"मैं जानता हूं
मेरा दर्द तुम्हारे लिए चींटी जैसा
और तुम्हारा अपना दर्द पहाड़ जैसा
इसीलिए
मेरे और तुम्हारे बीच
एक लम्बा फासला है
जिसे लंबाई से नहीं
समय से नापा जाएगा।"[1]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता समय से संवाद करती हैं। इसी संवाद में दलित चिंतन और साहित्य पुरानी जड़ता को खत्म करने की कवायद करता है। वर्ण और जाति भारतीय समाज की सबसे बड़ी जड़ता है। वर्ण और जाति आधारित व्यवस्था का नकार तथा समता आधारित व्यवस्था की निर्मिति दलित साहित्य का मुख्य स्वर है। अतीत और वर्तमान दोनों ही बेचैन करते हैं कवि एवं आलोचक वाल्मीकि को। इतिहास बोध दलित चेतना का अनिवार्य पहलू है। दमन का इतिहास दलित रचनाकार में संवेदनशीलता और चेतना पैदा करता है, प्रतिबद्धता और कर्त्तव्यबोध से उसे जोड़ता है जिससे उसकी संकल्पना और सरोकारों की निर्मिति होती है। उसके वजूद की दृढ़ता प्रतिपक्ष को चेतावनी देती है-

"मेरी स्मृतियों में
फिर भी बचा रह जाऊंगा
राक्षस नहीं
फैल जाऊंगा चारों ओर
डरावने देवता हैं
हवा में उड़ती राख की तरह
जो चैन से
राख बनेगी मिट्टी
सोने नहीं देते मुझे
मिट्टी से उपजेगा पौधा
..... .....
पौधा से बनेगा पेड़,,,,,,,,"[2]
जितना तोड़ोगे
ढहाओगे
जलाओगे

ईश्वर और देवता का नकार दलित कविता की मुख्य प्रवृत्ति है, क्योंकि सदियों से दलित वर्ग भाग्य-भगवान से छला जाता रहा है, अंधविश्वास के जरिए उसे डराया-सताया जाता रहा है। 'अंगूठे का निशान' शीर्षक कविता में ओमप्रकाश वाल्मीकि इतिहास के पन्नों से, अतीत के हृदय विदारक सच से वर्तमान रचते हुए दिखाई देते हैं-

"सच बोलने से नहीं रोक पाएंगे
अब शातिर देवता भी
फड़फड़ाएंगे इतिहास पृष्ठ
कहेंगे आओ, दर्ज कर दो
किसी भी पन्ने पर
अपने अंगूठे का निशान!"[3]

दलित यातना के इतिहासबोध से गहरी जुड़ीं ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताएं परंपरागत काव्य-सौंदर्य के इहलोक से मुक्ति की कविताएं हैं। इनकी कविताएं भिन्न काव्यालोक रचती हैं जहां अतीत एवं वर्तमान का मंथन है और भविष्य की चिंता एवं चिंतन। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताएं सपनों एवं आकांक्षाओं की आस की कविताएं हैं। घृणा, हिंसा और विषमता पर आधारित

व्यवस्था को नकारकर समता, स्वतंत्रता और करूणा का मानस रचने वाली दुनिया की कविताएं हैं। इनकी कविताओं में मनुष्य और प्रकृति की नैसर्गिकता में सहज मानवीय रिश्तों की तलाश है–

"मौसम से लड़ते हुए
अच्छे लगते हैं पेड़
और उनका हरापन
उससे भी ज्यादा अच्छे लगते हैं
हंसते खिलखिलाते वे लोग
जो नफरत नहीं करते
आदमी से
सपनों में भी!"[4]

हिंदी साहित्य की परंपरागत काव्य परंपरा में 'जाति' को प्रश्नांकित नहीं किया गया है। वर्ण और जाति की श्रेणीबद्धता पर प्रहार दलित काव्य की अनूठी विशेषता है। दलित काव्य में सौन्दर्यबोध का संबंध सामाजिक परिवर्तन की भाषा से है। भाषा–शिल्प किसी मानक पर तय नहीं हैं। दलित कविता अपने अनगढ़पन में ही नवीन बिम्ब–विधान सृजित करती है और समता की भाषा में रूपांतरित होकर दलित चेतना का ओज भरती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'पेड़' कविता सामान्य और सहज भाषा के साथ हिंदी साहित्य–शास्त्र के समानान्तर बिम्बार्थ का नया संसार रचती है–

''पेड़,
तुम उसी वक्त तक पेड़ हो
जब तक ये पत्ते
तुम्हारे साथ हैं
पत्ते झरते ही
पेड़ नहीं ठूंठ कहलाओगे
जीते जी मर जाओगे!"[5]

वर्चस्वशाली सभ्यता एवं संस्कृति के हजारों वर्ष के इतिहास को प्रश्नांकित कर साहित्य की अवधारणा और सौंदर्यबोध के मानदंडों को दलित कविता ने नवीन स्वरूप दिया है। हिन्दू धर्म और संस्कृति की पवित्रता को प्रश्नांकित कर दलित कविता ने आदर्श एवं नैतिकता को कटघरे में खड़ा किया है। दलित साहित्य में कविता के उद्‌भव के पीछे सदियों का दमन है जो कवि के रग–रग में व्याप्त है–

हजारों वर्ष का अंधेरा
छिपा बैठा है मेरी सांसों में
कांपता है दीये की लौ–सा
और तब्दील हो जाता है कविता में ।''[6]

दलित काव्य में रिरियाहट एवं याचना के लिए कोई जगह नहीं है। नियतिवाद और ईश्वर की अवधारणा का पूर्णत: नकार है। वेद, उपनिषद, स्मृतियां, अन्य धर्मशास्त्रों एवं पौराणिक गाथाओं में व्यक्त दलित विरोधी छवि के तिलिस्म को ओमप्रकाश वाल्मीकि की काव्य संवेदना बेनकाब करती है और मिथकों को नवीन अर्थ प्रदान करती है। 'शायद आप जानते हों' कविता में हिन्दू सभ्यता और संस्कृति की हिंसा और षड्‌यंत्रों को बेनकाब किया गया है। कवि ने यह स्पष्ट किया है कि हिन्दू–व्यवस्था की जो क्रूरताएं हैं उन्हें जानबूझकर अनदेखा और अनसुना कर दिया जाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की काव्योक्तियों में अभिव्यक्त चेतना और अंबेडकरवादी वैचारिकी से यह भान होता है कि कवि और उनका समाज उस सच को जान चुका है जिसके आधार पर सदियों से जुल्म होता आया है। कवि यह चेतावनी देता है कि अब तुम बहुत दिनों तक अपने षड्‌यंत्रों को जारी नहीं रख सकोगे–

"तुम्हारे रचे शब्द
तुम्हें ही डंसेंगे सांप बनकर।"[7]

पहली बार 26 जुलाई 1992 के हिंदी दैनिक नवभारत टाइम्स में छपी कविता हिंदी दलित साहित्य आंदोलन के विकास क्रम की ऐतिहासिक कविता है, दलित काव्य चेतना के उन्मेष और उन्नयन के प्रतीक के रूप में रेखांकित की जाती रही है–

''चूहड़े या डोम की आत्मा
ब्रह्म का अंश क्यों नहीं है
मैं नहीं जानता
शायद आप जानते हों!"[8]

हिन्दू संस्कृति द्वारा निर्मित धर्मशास्त्र, पुराण, स्मृतियां, मिथक, कर्मकाण्ड और अंधविश्वास की परम्परा को बदलने की अनुगूंज ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं की महत्वपूर्ण विशेषता है। दलित काव्य में श्रम का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। जिनके पसीने की कमाई से पूरा भारत पल–बढ़ रहा है उनकी भूमिका और महत्व को वाल्मीकि जी की कविता पूरा सम्मान देती है और श्रमशील दलितों के वजूद को रेखांकित करती है–

''वे भूखे हैं
पर आदमी का मांस नहीं खाते
प्यासे हैं
पर लहू नहीं पीते
नंगे हैं
पर दूसरों को नंगा नहीं करते
उनके सिर पर
छत नहीं है
पर दूसरों के लिए
छत बनाते हैं।"[9]

दलित चेतना प्रदत्त सौन्दर्यशास्त्र को यथास्थितिवादी मानती है। दलित काव्य में सौन्दर्यशास्त्र का अर्थ उस विचार से है जो सामाजिक परिवर्तन में सहायक हो, जिससे आमूलचूल बदलाव आ सके। वर्चस्व की भाषा का समता की भाषा में रूपांतरण दलित काव्य की अति महत्वपूर्ण विशेषता है। दलित काव्य की भाषा एवं शिल्प परंपरागत सौन्दर्यशास्त्र से स्वयं को अलगाकर परिवर्तनकामी सौन्दर्यबोध में परिणत होता है। यहां दलित काव्य के मानदंड नवीन सौन्दर्यबोध में ढलकर दलित चेतना की विकास प्रक्रिया को नए अर्थ प्रदान करते है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की काव्य-संवेदना दलित चेतना के इन मानदंडों पर एकदम खरी उतरती है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियां गांव, शहर, कस्बे के अन्तर्द्वन्द्व को सामने लाती हैं। दलित-गैर दलित रिश्तों की आत्मीयता, स्नेह और सहयोग को भी वे रेखांकित करते हैं। पुलिस-प्रशासन, राजनेता, मठाधीश, मुखिया, न्यायप्रणाली अर्थात् विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका के लोकतांत्रिक आधारों की नाकामियों और गठजोड़ को भी उनकी कहानियां व्यंजित करती हैं, साथ ही ग्रामीण और शहरी संस्कृति में व्याप्त जाति-व्यवस्था की जड़ता को भी बेनकाब करती हैं। जिनके माध्यम से दलित साहित्य की संवेदना एवं सरोकारों को समझा जा सकता है। दफ्तरों में सहकर्मियों और बॉस के रिश्तों में जातिभेद की कड़वाहटों को उनकी कहानियां बेबाकी से प्रस्तुत करती हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियां दलित और गैर दलित अंत:संबंधों और अतर्द्वन्द्वों को उजागर करती हैं तथा गैर दलित स्त्रियों की वेदनाओं को भी चित्रित करती हैं। दलित संवेदनशीलता के आलोक में उनकी लेखकीय प्रतिबद्धता की पड़ताल की जा सकती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के व्यापक अनुभवों से उनकी कहानियों में चित्रित पात्र एवं घटनाओं में जीवंतता का बोध होता है। दलितों और गैरदलितों के अंत:संबंधों को ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'सलाम' कहानी के माध्यम से समझा जा सकता है। 'सलाम' कहानी के गैरदलित पात्र कमल उपाध्याय को दलित अपमान और उपेक्षा का बोध तब होता है जब वह दलित दोस्त हरीश की शादी में एक चाय वाला उसे चूहड़ा समझ कर चाय नहीं पिलाता। चाय वाला कहता है- ''चूहड़ा है। खुद कू बामन बता रा है। जुम्मन चूहड़े का बाराती है। इब तुम लोग ही फैसला करो। जो यो बामन है तो चूहड़ों की बारात में क्या मूत पीणे आया है। जात छिपाके चाय मांग रा है।''[10]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जिनावर' कहानी चौधरी की हवेली के भीतर शोषण एवं दमन का चक्र किस प्रकार चलता रहता है यह कहानी उसी को उजागर करती है। बिरजू की बहू का शोषण उसके ससुर चौधरी द्वारा होता रहता है और पूरी हवेली में बिरजू की बहू के दर्द को सुनने वाला कोई नहीं है। सतवीर की किसनी का तीन महीने तक शारीरिक-मानसिक शोषण के बाद उसकी लाश मिलती है, जिसकी गवाह अकेली बिरजू की बहू है। चौधरी का नौकर जगेसर को हवेली के अंदर चल रहे कुचक्र, शोषण और अमानवीयता की भनक तक नहीं है। बिरजू की बहू द्वारा विरोध के बाद उसे घर से निकाल दिया जाता है। बिरजू की बहू को उसके मायके छोड़ने जाते हुए रास्ते में जगेसर की आत्मीयता पाकर उसकी वेदना के तार झंकृत हो उठते हैं और वह हवेली की हकीकत जगेसर के सामने खोल कर रख देती है। यही नहीं वह मझधार में फंस गई है क्योंकि पिता के गुजरने के बाद माँ के साथ मामा के घर में ही उसने होश संभाला। वही उसका मायका था जहां उसके मामा ने दस साल की अवस्था में ही इसके 'अबोध शरीर को बर्बाद कर दिया था।' वहां भी कोई सुनने वाला नहीं था। बेबशी ने उसके मां को डरपोक बना दिया था। वर्षों से अपने सीने में इस दु:ख, दर्द और वेदना को दबाई हुई बिरजू की बहू ने जब जगेसर के सामने अपने अंतर्मन की परतें खोली तो चौधरी के प्रति जगेसर का मन नफरत और गुस्से से भर उठा। जगेसर को यह अहसास हुआ कि चौधरी की हवेली की सुरक्षा और सेवा करते हुए उसने अपनी जिंदगी बर्बाद कर ली। एक ऐसे चौधरी के लिए जो 'आदमी नहीं, जंगली जिनावर है।' वह खुद भी कहीं जिनावर न बन जाए इससे पहले ही हकीकत जानने के बाद उसकी चेतना जाग उठी और वह बिरजू की बहू को न्याय दिलाने के लिए चौधरी की हवेली वापस चलने के लिए जोर डालता है। बिरजू की बहू कहती है- ''यह सुनसान जंगल हवेलियों से ज्यादा सुरक्षित है। कम से कम भेड़िए आवेंगे तो रंग-रूप बदल के तो ना आवेंगे। जाके कह देना छोड़ आए तो....।''[11] तब जगेसर ने बहू को समझाने की कोशिश की- ''ना बहू जी...मैं लछमन ना हूं जो सीता कू बियाबान जंगल में छोड़ के वापस चला जाऊं...जगेसर ने दृढ़ आत्मविश्वास दिखाया। उसके आत्मविश्वास को देखकर बहू भी चौंकी। धूप का एक कतरा जगेसर के चेहरे पर चमक पैदा कर रहा था। ... बहू उठकर खड़ी हो गई। उसी आत्मविश्वास से भरकर बोली, 'चलो।' जगेसर ने चौंककर देखा। बहू जी के चेहरे पर हल्की-सी खुशी दिखाई पड़ रही थी। बगीचे से बाहर कच्चे रास्ते पर धूप में अभी भी उतनी ही तपिश थी।''[12] 'जिनावर' कहानी का दलित पात्र जगेसर गैर दलित समाज के खोखलेपन और उनके विद्रूप चेहरे को देखकर गैर दलित समाज की स्त्री को न्याय की आस दिलाता है। चेतना आने के बाद जगेसर बाकायदा पक्षधरता चुनता है। चौधरी की बेटी सरोज और जगेसर के बीच प्रेम, स्नेह और आत्मीयता दलित कहानी के कथ्य और सरोकार को और विस्तार देती है। 'जिनावर' कहानी में मिथकीय पात्र 'लक्ष्मण' का संदर्भ परंपरागत साहित्य से भिन्न अर्थ देता है। इन्हीं अथों में दलित साहित्य के सौन्दर्यबोधीय

मानदण्ड बदल जाते है। इस कहानी की महत्ता इस संदर्भ में है कि गैरदलित समाज में व्याप्त स्त्री शोषण की चिंता और मुक्ति की आकांक्षा ओमप्रकाश वाल्मीकि के लेखकीय सरोकारों में शामिल है। यह संवेदना दलित साहित्य की व्यापकता को विस्तार देती है।

शिक्षण-संस्थानों, सरकारी दफ्तरों एवं ग्रामीण जीवन की असलियत का रेखांकन दलित कहानी का वैशिष्ट्य है। मजदूरी और किसानी जीवन की यथार्थता दलित कहानियों को बहुआयामी बनाता है। दलित जीवन-संदर्भ और लेखन में बाल शोषण का चित्रण और उसकी विश्वसनीयता दलित आत्मकथाओं से प्रमाणित होती है। इसीलिए दलित कहानी में यह वैशिष्ट्य अलग महत्व रखता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'रिहाई' में लाला का गोदाम वर्ण-व्यवस्था का क़ैदखाना है, जहां ज़िन्दगियों को रौंदा जाता है, मर्दित किया जाता है। सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था ने इंसानी ज़ज़्बे को मटियामेट कर दिया है, लेकिन 'रिहाई' कहानी का छुटकू गोदाम में आग लगाकर अंधेरे में नई रोशनी का संचार करता है। विषमता का बीज बोने वाली संस्कृति हाशिए की अस्मिताओं को निरन्तर दरकिनार करती रही है। प्रतिभा और मेरिट का सवाल खड़ा करने वाले लोग आज भी संकीर्णता से बाहर नहीं आ पाए हैं। आरक्षण ने उनके दिलोदिमाग में जहर घोल दिया है। शिक्षण संस्थाएं भी ऐसे संस्कार और सोच के लिए दोषी हैं। वहां भी विषमता के बीज मौजूद हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'घुसपैठिए' कहानी इसी रूप को उघाड़ती है। उक्त कहानी में सुभाष सोनकर की मौत शैक्षिक परिसर की गरिमा को झूठा साबित करती है- "दलित छात्रों का मेडिकल में आना डीन की दृष्टि में घुसपैठ थी।"[13] यह कहानी उन दलितों को भी कठघरे में खड़ा करती है जो आरक्षण के माध्यम से ऊंचे ओहदों पर पहुंच गए हैं, लेकिन उनका कोई सामाजिक सहयोग नहीं मिलता, कोई मार्गदर्शन नहीं मिलता। इस तरह की उदासीनता को यह दलित कहानी उजागर करती है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में आमूल परिवर्तन की तीव्र आकांक्षा विद्यमान है। उन कहानियों में भविष्योन्मुखी स्वप्न, एक दृष्टि और एक विकल्प दिखाई देता है- समता, स्वतत्रता और बंधुत्व का। बाबा साहेब बी. आर. अंबेडकर का नारा- 'शिक्षित बनो! संघर्ष करो! संगठित हो' ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में साकार होता हुआ दिखाई देता है। दलित चेतना का विकास और परिवर्तनकामी स्वर उनकी कहानियों की मूल प्रवृत्ति है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'यह अंत नहीं' ग्रामीण दलित स्त्री चेतना की प्रामाणिक कहानी है जो कुदृष्टि रखने वाले पर साहसिक ढंग से पुरजोर वार करती है और दुश्मन की बेहयाई को कायरता में तब्दील कर देती है। लेखक बड़ी तल्खी से पंचायती राज-व्यवस्था की निरर्थकता और उसके दुरुपयोग को महसूस करता है। गांव का बिसन दलित है, लेकिन वह झगड़ों और सामंतों का मोहरा बनकर रह गया है। ऐसे में दलित स्त्री बिरमा को न्याय की आशा व्यर्थ दिखती है, परंतु बिरमा की मुखरता ने सभी में आशा का संचार कर दिया था, सभी ने मिलकर कहा था, "ना बिरमा..... यह अंत नहीं है....तुमने हमें ताकत दी है। हार को जीत में बदलेंगे, लोगों में विश्वास जगाकर, ताकि फिर कोई बिसन मोहरा ना बने।"[14] दलित कहानीकार ओमप्रकाश वाल्मीकि सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था के प्रति इतने चौकस हैं कि वे विषमता आधारित व्यवस्था के हर धागे को उधेड़कर उसकी असलियत से परिचय कराते चलते हैं। डॉ. अंबेडकर ने गांवों को भारतीय गणतंत्र की अवधारणा का शत्रु माना था। उनके अनुसार, हिन्दुओं की ब्राह्मणवादी और पूंजीवादी व्यवस्था का जन्म भारतीय गांव में ही होता है। डॉ. अंबेडकर का मानना था कि भारतीय गांव हिन्दू-व्यवस्था के कारखाने हैं। उनमें ब्राह्मणवाद, सामंतवाद और पूंजीवाद की साक्षात अवस्थाएं देखी जा सकती हैं, उनमें स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के लिए कोई स्थान नहीं है।

दलित कहानियां जातिबोध के आभ्यंतरीकरण पर विमर्श का परिवेश रचती हैं। यह दलित कहानी का महत्वपूर्ण वैशिष्ट्य है जो दलित लेखकों की जवाबदेही तय करता है और दलित कहानी के सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकारों को मजबूती प्रदान करता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की वैचारिक परिपक्वता का सबूत 'शवयात्रा' कहानी में मिलता है, जब बड़े साहस के साथ दलितों के भीतर के अन्तर्विरोध और अंबेडकरवादी संगठनों के ढोंग को लेखक बेनकाब करता है। दलित कहानी की वैचारिकी उसकी अमूल्य निधि है। दलित कहानीकारों की वैचारिक प्रतिबद्धता और दलित चेतना का प्रसार दलित साहित्य की धरोहर है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'मुम्बई कांड' में वैचारिक प्रतिबद्धता साकार होती है। कहानीकार सजग और सचेतन रूप से प्रतिशोध एवं प्रतिरोध की बारीकियों को स्पष्ट करता है। कहानी का पात्र सुमेर मुंबईकांड के प्रतिक्रियास्वरूप जूते की माला लेकर उठ खड़ा होता है, लेकिन कदम बढ़ाते ही उसके मस्तिष्क में विचार कौंधता है, "अरे! मैं यह क्या कर रहा हूं। मुंबई में किसी ने मेरे विश्वास पर चोट की और मैं यहां किसी की आस्था पर चोट करने जा रहा हूं। कुछ गांधी को 'बापू' कहते हैं और कुछ अम्बेडकर को 'बाबा', वहां 'बाबा' कहने वाले मारे गए, यहां बापू वाले मारे जा सकते हैं। 'बाबा' कहने वालों पर भी गाज गिर सकती है। जो भी हो मारे तो निर्दोष ही जाएंगे..... नहीं..... यह रास्ता न बुद्ध का है और न ही अंबेडकर का।"[15]

ओमप्रकाश वाल्मीकि अंबेडकरवादी दृष्टि और

सुनियोजित रणनीति के साथ लेखन करते रहे। उनकी आलोचना दृष्टि, रचनात्मक लेखन, भाषण और प्रश्नोत्तरों को समझे बगैर उन्हें संपूर्णता में नहीं समझा जा सकता है। गांधी-अम्बेडकर के मतभेद अर्थात पृथक निर्वाचन एवं पूनापैक्ट के संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि की आलोचना दृष्टि को व्यापक संदर्भों में समझना होगा। ऐसे ही प्रेमचंद की गांधी के प्रति पक्षधरता को प्रश्नांकित करने की ओमप्रकाश वाल्मीकि की दृष्टि को समग्रता में समझना होगा। वे एक तरु गांधी-अंबेडकर के मतभेदों के आलोक में डॉ. अंबेडकर के प्रति पक्षधरता चुनते हैं तो दूसरी तरु उनकी 'मुंबईकांड' कहानी में ओमप्रकाश वाल्मीकि का पात्र सुमेर गांधी के अनुयायियों के प्रति सकारात्मक भाव रखता है। ऐसे ही प्रेमचंद की आलोचना करते हुए भी उन्हें साहित्य के संदर्भ में अपना प्रेरणास्रोत मानते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुभव, संघर्ष और उनके समग्र लेखन को संपूर्णता में समझना होगा।

'जूठन' में वर्ण-व्यवस्था से उपजी भयानक चीखें हैं जो अंतर्मन को झिंझोड़कर रख देती हैं। 'जूठन' को लिखते वक्त ओमप्रकाश वाल्मीकि ने पुनः उन दर्दों को जीया जो उन्हें वक्त-दर-वक्त भोगना पड़ा। ओमप्रकाश वाल्मीकि आत्मकथा के शुरू में ही लिखते हैं कि ''इन अनुभवों को लिखने में कई प्रकार के खतरे थे। एक लंबी जद्दोजहद के बाद मैंने सिलसिलेवार लिखना शुरू किया। तमाम कष्टों, यातनाओं, उपेक्षाओं, प्रताड़नाओं को एक बार फिर जीना पड़ा। उस दौरान गहरी मानसिक यंत्रणाएं मैंने भोगीं। स्वयं को परत-दर-परत उधेड़ते हुए कई बार लगा-कितना दुखदायी है यह सब! कुछ लोगों को यह अविश्वसनीय और अतिरंजनापूर्ण लगता है।''[16]

ओमप्रकाश वाल्मीकि के यहां साहित्य की शुरूआत घनीभूत वेदना से होती है। यहां वर्ण-व्यवस्था से उपजा संत्रास है, जिसका भुक्तभोगी स्वयं लेखक ही है। वे जिस परिवेश में पले और जिन यातनादायी क्षणों से उन्हें गुजराना पड़ा वह कितना भयावह और अंधकारमय था, स्वयं उन्हीं के शब्दों में ''चारों तरफ गंदगी भरी होती थी। ऐसी दुर्गंध कि मिनट भर में सांस घुंट जाए। तंग गलियों में घूमते सूअर, नंग-धड़ंग बच्चे, कुत्ते, रोजमर्रा के झगड़े, बस यह सब था वह वातावरण जिसमें बचपन बीता। इस माहौल में यदि वर्ण-व्यवस्था को आदर्श-व्यवस्था कहने वालों को दो-चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाएगी।..... अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते, बिल्ली, गाय-भैंस को छूना बुरा नहीं था, लेकिन यदि चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इंसानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपयोग खत्म। इस्तेमाल करो, दूर फेंको।''[17]

यही है हिन्दू जीवन-जगत की हकीकत। जिसमें जीना तो दूभर है ही, सांस लेना भी मुश्किल है। इसी आंतरिक उपनिवेशवाद से मुक्ति के लिए फुले-अंबेडकर ने आजीवन संघर्ष किया था। विदेशी उपनिवेशवाद से आजादी तो मिल गई, लेकिन आंतरिक गुलामी की ठोकरों की मार दलित-बहुजन आज भी झेल रहे हैं। डॉ. अंबेडकर के शब्दों में ''यही है भारतीय गांवों के भीतरी जीवन की तस्वीर। इस गणतंत्र में लोकतंत्र के लिए कोई स्थान नहीं। इसमें स्वतंत्रता के लिए कोई स्थान नहीं। इसमें भ्रातृत्व के लिए कोई स्थान नहीं। भारतीय गांव गणतंत्र का ठीक उल्टा रूप हैं। अगर यह गणतंत्र है तो यह स्पृश्यों का गणतंत्र है, स्पृश्यों के द्वारा है और उन्हीं के लिए है। यह गणतंत्र अस्पृश्यों पर स्थापित हिन्दुओं का एक प्रकार का उपनिवेशवाद है, जो अस्पृश्यों का शोषण कर रहे हैं।''[18]

समकालीन संदर्भों में जाति-पांति, ऊंच-नीच, छुआछूत, लिंगभेद, भाग्य-भगवान, कर्मकाण्ड, पुनर्जन्म, स्वर्ग-नरक, पाखंडवाद, पुरोहितवाद, अंधविश्वास तथा वर्चस्व एवं दमन के विविध रूपों का विरोध ओमप्रकाश वाल्मीकि के लेखन में मिलता है। दलित चेतना की निर्मिति का यही मूल आधार और प्रमुख स्वर है जो यथास्थितिवाद को नकारकर नवीन मानदंडों और सौन्दर्यबोध में रूपांतरित होता है। दलित साहित्य के रचनाकारों में दलित चेतना के बोध और विकास की पृष्ठभूमि एवं निर्मिति में ज्योतिबा फुले और बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर का जीवन संघर्ष, दर्शन और आंदोलन एक आधारशीला है जो आत्मसम्मान, अधिकार और मानवीय गरिमा से संपृक्त है। वर्चस्व, शोषण और दमन के खिलाफ आवाज उठाने वाले संतों, गुरूओं और अन्य परिवर्तनकामी आंदोलनों की परंपरा से भी दलित चेतना का स्वरूप बना है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की रचनाधर्मिता की वैचारिक आधारभूमि के निर्माण की यही पृष्ठभूमि है। उनका लेखन भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि का ध्येय, प्रतिबद्धता एवं समर्पण उनके साहित्य व कर्मक्षेत्र में बहुत साफ झलकता है। इस कवि एवं आलोचक को गत तीन हजार वर्षों के यातनामयी इतिहास ने लिखने के लिए उकसाया है, संवेदनशीलता एवं सर्जनात्मक ऊर्जा पैदा किया है। यहां उल्लेखनीय यह है कि वर्चस्ववादी व्यवस्था की वेदना ने ओमप्रकाश वाल्मीकि जैसे साहित्यकार को प्रतिशोधी नहीं प्रतिरोधी बनाया है। इनके लेखन में आक्रोश मिल सकता है, क्रोध नहीं। वास्तविक दलित लेखन का यही मूल तत्व है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आलोचना इस अपेक्षा पर एकदम खरी उतरती है- "हिंदी साहित्य ने एक सीमित दायरे को ही अपनी दुनिया मान ली है, लेकिन इससे दुनिया का अस्तित्व कम नहीं हो गया है। हजारों पस्त, दीन-हीन दलित धरती की शक्ल बदलकर अपनी आंतरिक ऊर्जा और ताप का सबूत देते हैं। उनके चहरे

भले ही उदास दिखें पर उनके संकल्प दृढ़ हैं, इरादे बदस्तूर । वे विवश हैं लेकिन इस हालात में बदलाव चाहते हैं, यह उनकी बारीक धड़कनों को सुनकर ही समझा जा सकता है।''[19]

दलित आलोचना की फुले-अंबेडकरवादी दृष्टि ने 'मुख्यधारा' के साहित्य, संस्कृति, इतिहास, धर्म एवं राजनीति आदि का परीक्षण किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं कि "मुख्यधारा-एक वर्ण विशेष (वर्ग नहीं) की इच्छाओं-आकांक्षाओं से उत्पन्न मान्यताओं, स्थापनाओं की धारा और इस धारा के लिए एक दलित को अपने वजूद के लिए संघर्ष करना पड़े। तब यह मुख्यधारा बेहद खूंखार और निर्दयी होकर अपने तमाम दांव-पेंचों, कलाबाजियों, बौद्धिक विमर्शों, साहित्य शिल्पों के साथ दीवार की तरह खड़ी हो जाती है और दलित के अस्तित्व को ही नकार देती है।''[20] ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखने का कारण बताते हैं, ''दलितों को अस्पृश्य, अंत्यज बनाकर समाज से अलग कर देने इस देश में न तो बाबर आया था, न कोई अंग्रेज। यहीं के हमारे अपने तथाकथित महान् संस्कृति के लोग थे, जिन्होंने गत तीन हजार वर्षों में, जितने जुल्म ढाए, जितना शोषण किया, उतना तो विदेशी शासक भी नहीं कर पाए। यह पीड़ा बार-बार उकसाती है और मेरे लिखने का कारण बनती है।''[21]

दलित आलोचना ने परंपरागत स्थापित मानदंडों की परवाह किए बगैर एक चुनौती पेश की है। दलित लेखन और दृष्टि का गैर दलित मानदंडों एवं दृष्टि द्वारा किए गए विश्लेषणों से 'मुख्यधारा' का सवाल पैदा हुआ है। अंबेडकरवादी विचारधारा को न समझ पाने तथा दलित आलोचना पर अंकुश लगाने की कोशिशों ने भी 'मुख्यधारा' को जन्म दिया। 'मुख्यधारा के यथार्थ' शीर्षक के अंतर्गत ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं- "घेरे से बाहर रहने की उसकी छटपटाहट ने दलित साहित्य की एक ऊर्जावान धारा को जन्म दिया है ,जो तथाकथित इस मुख्यधारा के विपरीत ध्रुवों पर खड़ा है।''[22] ओमप्रकाश वाल्मीकि की आलोचना के केन्द्र में स्वाभिमान, आत्मसम्मान, अधिकार, न्याय एवं स्वतंत्रता की अनुगूंज है। दलित चेतना को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं- "दलित चेतना का सीधा सरोकार 'मैं कौन हूं' से बहुत गहरे तक जुड़ा हुआ है। चेतना का संबंध दृष्टि से होता है, जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक भूमिका की छवि के तिलिस्म को तोड़ती है।''[23]

नवजागरण और स्वतंत्रता आंदोलन को विश्लेषित करते हुए तथा उनके अंतर्विरोधों को चिह्नित कर संपूर्णता में परखने की मांग ओमप्रकाश वाल्मीकि की आलोचना में मिलती है। इसी परिप्रेक्ष्य में भाषा समस्या, गांधी जी और हिंदी-उर्दू-फारसी के रिश्तों एवं विकास पर भी उनकी व्यापक नजर है। नवजागरण में दलित प्रश्नों की अनदेखी पर उन्होंने बेबाकी से लिखा है। प्रेमचंद को दलित विमर्श के नजरिए से देखते हुए गांधी और डॉ0 अंबेडकर के सामाजिक एवं राजनीतिक आंदोलन पर प्रेमचंद द्वारा की गई टिप्पणियों के आधार पर ओमप्रकाश वाल्मीकि उन्हें हिंदू-व्यवस्था के पक्षधर के रूप में देखते हैं- "एक संपादक की हैसियत से प्रेमचंद ने अपने मासिक पत्र 'हंस' और साप्ताहिक 'जागरण' में 'दलित समस्याओं' पर अनेक टिप्पणियां लिखीं। पृथक निर्वाचन के प्रश्न पर जब गांधी जी ने यरवदा जेल में 'आमरण' अनशन किया, तब भी प्रेमचंद ने लगातार लिखा, लेकिन वे भी इन समस्याओं को गांधी जी के ही दृष्टिकोण से देख रहे थे। उनकी दृष्टि में भी वे ही तत्व मौजूद थे, जो किसी भी हिंदू रचनाकार, राजनीतिज्ञ और संपादक की सोच और चिंता का हिस्सा थे।''[24] ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी पक्षधरता को सुस्पष्ट करते हुए वे प्रेमचंद की पक्षधरता का प्रश्न उठाते हैं। यद्यपि उन्होंने प्रेमचंद को बतौर लेखक अपना प्रेरणास्रोत माना है। उनकी उपर्युक्त टिप्पणी गांधी और अंबेडकर के ऐतिहासिक पूना पैक्ट के संदर्भ में पक्षधरता चुनते हुए की गयी है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आलोचना दृष्टि दलित आलोचना के अंतर्विरोधों की भी पड़ताल करती है। 'प्रेमचंद: सामंत का मुंशी' के मार्फत दलित स्त्री पर किए गए प्रहार को चिह्नित करते हुए वे लिखते हैं- "स्त्री की कोख से जन्मा पुरूष आलोचक जब उसी स्त्री को व्यभिचारिणी या जारकर्म में रत कहे, तब ऐसे आलोचकों से तर्कपूर्ण तथ्यों और आंदोलन को आगे बढ़ाने की आशा करना व्यर्थ है। एक दलित स्त्री तमाम विपरीत परिस्थितियों में अपने परिवार का उत्तरदायित्व जिस ऊर्जा और मानवीय सामाजिक सरोकारों के साथ वहन करती है, उसे अनदेखा करना स्त्री के साथ अन्यायपूर्ण कृत्य ही कहा जाएगा।''[25] ओमप्रकाश वाल्मीकि की आलोचना यह विश्वास दिलाती है कि दलित साहित्य समता, स्वतंत्रता, मैत्री और बंधुता का साहित्य है, मनुष्य और मनुष्यता का साहित्य है, वह अपनी आलोचना पुस्तक 'मुख्यधारा और दलित साहित्य' में लिखते हैं कि "मेरा मानना है कि दलित साहित्य सामाजिक जीवन में मानव-मूल्यों के प्रति गहरा लगाव रखता है और उनकी पुनर्प्रतिष्ठा के लिए कृतसंकल्प है। इसकी अंतर्धारा में जीवन के वे तमाम सरोकार शामिल हैं जो एक मनुष्य को मनुष्य के रूप में पहचाने।''[26]

साहित्यिक-सामाजिक प्रतिबद्धता और वैचारिक पक्षधरता के रचनाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की अंतिम आलोचनात्मक कृति 'दलित साहित्य: अनुभव, संघर्ष और यथार्थ' संवेदना एवं सरोकारों की एक अनूठी प्रस्तुति है। यह कृति आलोचना का नया पाठ रचती है, साथ ही पाठकों-आलोचकों की जवाबदेही तथा जिम्मेदारी भी तय करती है। परंपरागत साहित्यालोचना में अनछुए-अनकहे विविध पहलुओं-प्रसंगों-प्रश्नों के साथ प्रस्तुत

कृति आलोचकीय मानदंडों का नया लोक एवं मानस रचती है। वास्तव में उनका यह आलोचनात्मक लेखन हिंदी आलोचना के एकांगीपन एवं अधूरेपन की पूर्ति का सर्जनात्मक कर्म है। इसे हिंदी साहित्यालोचना की समृद्धि और संवर्द्धन के रूप में देखा जाना चाहिए। उनकी यह आलोचनात्मक दृष्टि परंपरागत आलोचना के मानक एवं मानदंड को भंग करती है। उनके इस आलोचनात्मक कर्म से यह महसूस किया जा सकता है कि इसमें संस्मरण, आत्मकथांश, लेख, शोध-आलेख, भाषण और एक पाठक के पत्र के उत्तर के माध्यम से साहित्यालोचन की नवीन भावभूमि सृजित की गयी है, जैसे 'रचना प्रक्रिया' के अन्तर्गत 'मेरे लिए लेखन किसी यातना से कम नहीं है', 'मेरी कहानियाँ मानवीय सरोकारों की पक्षधर हैं' तथा 'मेरी कविताओं का आंतरिक यथार्थ' में ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुभव, संघर्ष और यथार्थ के साथ-साथ रचनाकार की रचनाधर्मिता पुष्ट होती है, जिससे सामाजिक-सांस्कृतिक एवं साहित्यिक आलोचना का नवीन प्रकाश भी प्रदीप्त होता है। विषमतापरक सामाजिक व्यवस्था और घुटन भरे जातिगत माहौल में साँस लेते हुए बालक का अपनी विकास यात्रा में रचनाकार बनने की प्रक्रिया में एक साहित्यकार का यह अनुभव है कि 'मेरे लिए लेखन किसी यातना से कम नहीं है।' इस अनुभव में भारतीय गाँवों में व्याप्त जातिवादी माहौल, शिक्षा, शिक्षक एवं शिक्षण संस्थाओं की विद्रूपता, संपादकों, परंपरागत साहित्य की भूमिकाओं तथा आंदोलनों का यथार्थ समाहित है। ओमप्रकाश वाल्मीकि साहित्यालोचन की नवीन परंपरा की आधारभूमि का सृजन करते हैं, जो अभी तक परंपरागत साहित्यिक आलोचनात्मक परंपरा में संभावित नहीं था। अनुभव एवं संघर्ष की तीक्ष्णता एवं दाहकता में पगी हुई ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियाँ मानवीय सरोकार की पक्षधर हैं। उनके यथार्थजनित जीवन की टीस से पनपता रचनात्मक कर्म आलोचनात्मक दृष्टि में परिणत होता है। अपमान, अन्याय, अनादर, घृणा और हिंसा आधारित सामाजिक-धार्मिक व्यवस्था में जीने वाले सर्जक ओमप्रकाश वाल्मीकि का साहित्यिक-आलोचकीय सरोकार समता आधारित समाज का सपना है। उनके साहित्य का लक्ष्य सम्मान, न्याय, गरिमा, करूणा और प्रेम है। उनकी रचना और आलोचना की यही आधारभूमि है। इसी संदर्भ में उनकी कहानियाँ मानवीय सरोकारों की पक्षधर हैं और वे प्रेम की पक्षधरता की कहानियाँ हैं। उनकी कविताओं का आंतरिक यथार्थ समाज में व्याप्त हजारों साल के शोषण-दमन की यातना से मुक्ति की चेतना में ढलकर समतापरक समाज निर्माण का वैचारिक यथार्थ है। यह यथार्थपरकता हिंदी आलोचना के केन्द्र में क्यों नहीं है? ओमप्रकाश वाल्मीकि का यह केन्द्रीय प्रश्न है।

हिंदी दलित लेखन के प्रति गैरदलित नजरिया कैसा रहा है और आज कैसा है? इस आलोक में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने गंभीरता से विचार करते हुए 'हिंदी दलित साहित्य की लोकतांत्रिकता' के परिप्रेक्ष्य में आलोचनात्मक दृष्टि विकसित किया है। परंपरागत साहित्यिक मानदंडों और शिल्प विधान की अमूर्तता की अनिवार्यता के कारण साहित्य का जनसाधारण से दूर हो जाने की चिंता ओमप्रकाश वाल्मीकि की आलोचना दृष्टि के केन्द्र में है। वे लिखते हैं कि, ''एक कवि जब अर्मूतन का प्रयोग अपनी अभिव्यक्ति के लिए करता है तो वह शिल्प और कला की आकर्षक शैली के कुचक्र में फँसकर रचना को दुरूहता की ओर ले जाता है। जबकि कविता में कबीर की परंपरा का सहज और तार्किक विकास यदि होता, तो कविता आज भी भारतीय जनमानस के सबसे ऊँचे स्थान पर बैठी होती।''[27] एक लेखक और आलोचक की इस चिंता को हिंदी साहित्यालोचना के एकांगीपन और अधूरेपन को पूर्णता प्रदान करने की आकांक्षा के रूप में देखा जाना चाहिए। दलित साहित्य के प्रति नकारात्मक दृष्टि को बेनकाब करते हुए हिंदी के विद्वानों के द्वंद और अंतर्विरोध को ओमप्रकाश वाल्मीकि ने सुस्पष्टता और निडरता से चुनौती दी है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि, ''जब भारतीय परंपरागत संस्कारों से लैस समीक्षक दलित साहित्य पर कलम चलाता है तो दलित साहित्य की अंत:धारा को पकड़ने के बजाए उसके आशय को समझने और जानने की जगह, उसके भावबोध और उसके कलापक्ष को ही निशाना बनाता है। यह कबीर के साथ भी हुआ है। और अब दलित साहित्य के साथ भी वैसी ही स्थिति उत्पन्न की जा रही है।''[28] दलित साहित्य को एक आंदोलन के रूप में प्रस्तुत करते हुए उसके लोकतांत्रिक और समतावादी पक्षधरता को ओमप्रकाश वाल्मीकि प्रमुखता देते हैं। वे रचना की अंतर्वस्तु की सामाजिक दृष्टि और उसके आशय की गुणवत्ता पर प्रकाश डालते हुए रचनाकार के जीवन अनुभव, आत्मसंघर्ष, स्वानुभूति, और अनुभवों की प्रामाणिकता के प्रभाव को उन्होंने जरूरी बताया है। उनका मानना है कि, ''हिंदी दलित साहित्य ने अपने प्रारम्भिक काल से ही यह अनुभव किया कि हिंदी आलोचक दलित साहित्य में अंतर्निहित चेतना को समझने की बजाय उसे सामाजिक सरोकारों से दूर करने की कोशिश करते रहे हैं। यह स्थिति आज भी बनी हुई है।''[29]

'दलित आत्मकथाओं का सामाजिक और साहित्यिक परिदृश्य' के संदर्भ में विवेचन करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ''दलित आत्मकथाओं ने साहित्य में एक नए विमर्श का सूत्रपात किया है। हिंदी में कल तक जो साहित्य की श्रेष्ठता थी, उस पर इन आत्मकथाओं ने सवालिया निशान लगा दिए हैं।''[30] एक आत्मकथाकार होने की वजह से उन्होंने बड़ी बारीकी और संजीदगी से विचार व्यक्त किया है।

उनका मानना है कि, ''दलित आत्मकथा अतीत की सिर्फ स्मृतियाँ नहीं है। ये समाज व्यवस्था की अमानवीयता को समझने का स्रोत भी हैं जो पाठकों की चेतना का नवनिर्माण करने में सहायक होती हैं।'' यह वक्तव्य दलित साहित्य लेखन की महत्ता को प्रतिपादित करता है और आलोचना दृष्टि को भी पुष्ट करता है।

'दलित साहित्य का वैचारिक संघर्ष' के आलोक में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'हिंदी दलित कविता और संत साहित्य', 'दलित साहित्य की अंत:धारा और उसका सामाजिक यथार्थ' तथा दलित लेखन की आधुनिकता और सांस्कृतिक विरासत पर सुगठित शोध किया है। दलित साहित्य के अंतर्गत संत साहित्य को लेकर चल रहे द्वंद को सुस्पष्ट तरीके से जाति और ईश्वर के संदर्भ में वैचारिकी के फर्क को स्पष्ट किया है तथा विचारधारा की विकास प्रक्रिया में डॉ. अम्बेडकर की भूमिका को रेखांकित करते हुए दलित साहित्य आंदोलन की पृष्ठभूमि को विवेचित किया है। दलित साहित्य की अंत:धारा और उसके सामाजिक यथार्थ पर विचार करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि 'दलित' शब्द की जाति-बोधक पहचान को नकारते हुए उसे समूह की अभिव्यंजना के रूप में प्रस्तुत करते हैं और इसी आधार पर दलित चेतना के विशिष्ट बिंदुओं को सुस्पष्ट करते हैं। दलित साहित्य अंत:धारा को समझने के लिए उसके वैचारिक और सामाजिक दृष्टिकोण को समझना वे जरूरी मानते हैं। किसी भी कृति के 'आकार' और 'आशय' को दृष्टि में रखकर ही दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र पर विचार करने पर जोर देते हैं। दलित लेखन की आधुनिकता और सांस्कृतिक विरासत की विस्तृत विवेचना एवं व्याख्या करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि हिंदी के आलोचक, लेखक और बुद्धिजीवियों पर सवालिया निशान लगाते हुए कहते हैं कि, ''दलित साहित्य की आंतरिकता को समझने के पहले ही उस पर तलवार लेकर पिल पड़ते हैं। उसे अधकचरा, कमजोर, शिल्पहीन जैसे आरोपों से सुसज्जित कर अपनी साहित्यिक श्रेष्ठता का दंभ भरने लगते हैं। दलित लेखकों की बात को ठीक से सुने बगैर या पढ़े बिना वक्तव्य देने का रिवाज हिंदी में स्थापित हो चुका है।''[32] अस्मितादर्श साहित्य सम्मेलन, चंद्रपुर (महाराष्ट्र) 2008, के सम्मेलनाध्यक्ष के रूप में दिया गया वक्तव्य 'दलित साहित्य की सामाजिक प्रतिबद्धता' बहुत ही ऐतिहासिक और महत्वपूर्ण वक्तव्य है। वे कहते हैं कि ''भारतीय समाज व्यवस्था में हाथ से काम करना, परिश्रम से रोजी-रोटी कमाना हीनता का पर्याय है। एक व्यक्ति जो घर, दफ्तर, शौचालय, सड़कें, स्कूल, कॉलेज को हर पल स्वच्छता प्रदान करता है, वह अपवित्र और अस्पृश्य कहलाता है। समाज उसके प्रति दुर्भावनापूर्ण व्यवहार करता है। उसे हीन मानता है। साहित्य में उसके लिए दुर्भावना से भरे संबोधन मिलते हैं।''[33] उनका मानना है कि, ''दलित साहित्य ने इन सवालों को गम्भीरता के साथ उठाया है वह समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समता, बंधुत्व और स्वतंत्रता का प्रतीक मानता है।''[34] ओमप्रकाश वाल्मीकि की वैचारिकी और पक्षधरता समाज में भाईचारे को बढ़ावा देती है। वे मजबूती से इस बात को सिद्ध करते हैं कि समाज का विकास घृणा से नहीं, प्रेम और विश्वास से हो सकता है। दलित साहित्य लेखन के इन सरोकारों को वे अपनी आलोचना दृष्टि में पुष्ट करते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी आलोचनात्मक पुस्तक में प्रेमचंद का नया पाठ प्रस्तुत किया है। 'प्रेमचंद का दलित पाठ' शीर्षक के अंतर्गत 'प्रेमचंद की कहानी 'कफन' एक पुनर्मूल्यांकन', 'गोदान: एक पुनर्मूल्यांकन', 'प्रेमचंद और दलित विमर्श' तथा 'संवेदना का विस्तार : समकालीनता का संदर्भ-बिंदु' विषय पर अपनी आलोचना दृष्टि केन्द्रित करते हुए अनेकश: दलित प्रश्नों को विस्तार दिया है। इससे प्रेमचंद के लेखन को नई दृष्टि मिलती है। इसी कड़ी में नागार्जुन की 'हरिजनगाथा' नामक कविता का नया पाठ प्रस्तुत कर हिंदी आलोचना के समक्ष दलित प्रश्न और उसकी वैचारिकी में निहित चेतना के आलोक में विवेचन करने की चुनौती दी है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की आलोचकीय चुनौतियों को संवेदनशीलता के साथ देखने और परखने की जरूरत है। नए प्रश्नों को सुनने का साहस हिंदी आलोचना में विकसित होना चाहिए। नए प्रश्नों को विवाद के रूप में नहीं, बहस के रूप में लेना चाहिए। हमारी भारतीय व्यवस्था इतनी जटिल है तो प्रश्न भी सहज नहीं हो सकते। प्रेमचंद और नागार्जुन के लेखन के माध्यम से ओमप्रकाश वाल्मीकि ने जो दलित पाठ प्रस्तुत किया है वह हिंदी आलोचना को और मजबूती प्रदान करता है। इससे इन महत्वपूर्ण साहित्यकारों का सामाजिक महत्व तो बढ़ता है, साथ ही वर्तमान लेखन की जवाबदेही और जिम्मेदारी भी तय होगी। यह एहसास कराना आलोचना का धर्म भी है। ओमप्रकाश वाल्मीकि इस आलोचकीय धर्म को सफलतापूर्वक निभाते हैं। समतापरक समाज की निर्मिति ही ओमप्रकाश वाल्मीकि की सर्जना का मुख्य ध्येय है।

**संदर्भ:-**

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि, अब और नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 17
2. अब और नहीं, पृ. 79
3. अब और नहीं, पृ. 25
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृ. 91
5. वही, पृ. 11
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि, अब और नहीं, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 22

**शेष पृष्ठ 34 पर**

प्रदत्त है और उसे जन प्रचलित नए नए प्रयोग के द्वारा व्यतिकीर्ण होता है। अनित्यवाद के अनुसार जनता में प्रचलित होने वाला रूप ही मूल होता है।

भाषा के दो व्यवहृत रूप वे बताते हैं । साधु या व्याकरण सम्मत शब्द वह है जो शिष्ट प्रयोग का विषय हो तथा आगम अर्थात शास्त्रदि में धर्मादि साधन के लिए व्यवहृत होता हो। आगम का अर्थ परंपरा से अविच्छिन्न उपदेश अर्थात श्रुतिस्मृति लक्षण ज्ञान हैं धर्म का विधान उन्ही श्रुतियों में किया है। श्रुति को अकर्तृक, अनादि और अविच्छिन्न माना है। लोक भाषा का महत्त्व उनकी इस धारणा में व्यक्त है कि जिस प्रकार श्रुति के अविच्छिन्न होने से उसमें प्रयुक्त शब्द नित्य होते हैं, उसी प्रकार अर्थ को वहन करने एवं जन प्रयोग होने के कारण असाधु या अपभ्रंश शब्द भी अव्यवच्छेय होते हैं। कुलमिलाकर, भाषा सम्बन्धी उनके चिंतन का निचोड़ यह है कि मानव अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम होने के कारण वाक् या शब्द नित्य है, इसकी अर्थभावना से ही जागतिक प्रक्रिया चल पाती। है। कहना न होगा कि भर्तृहरि का यह भाषा चिंतन आधुनिक कथा-भाषिक आलोचना का मार्गदर्शन कर सकता है। भाषा सम्बन्धी यह काव्यशास्त्रीय चिंतन आज अनुसन्धान का जरूरी विषय है।

अत: साहित्य और अपने संदर्भ में कथा-साहित्य के विवेचन विश्लेषण हेतु भाषा एक कारगर और विश्वसनीय प्रतिमान बनकर उभरती है। साहित्य यथार्थ से सम्बद्ध है या नहीं यह उसकी भाषा के माध्यम से अधिक सटीक रूप से जाना जा सकता है। वह प्रगतिशील या पतनशील है, भाषिक विंन में उसका संकेत मिल जाता है। और तो और, जैसा कि आलोचक मैनेजर पाण्डेय का मानना है कि साहित्य की विचारध्रा भी उसकी भाषा में मौजूद होती है।'[7] अत: जरूरी है कि संस्कृत काव्यशास्त्रीय भाषा चिंतन में जो सूत्र उपयोगी हैं उनका प्रयोग कथा-भाषिक आलोचना की पीठिका के रूप में किया जाए ।

**संदर्भ:-**


1. रामस्वरूप चतुर्वेदी: हिन्दी गद्य: विन्यास और विकास लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996
2. आ.दंडी: काव्यदर्श:, प्रथम परिच्छेद, श्लोक-4 (http://www.sanskrit.nic.in/DigitalBook/k/kavyadarshdandi.pdf)
3. Lodge, David: Language of Fiction: Essay in Criticism and Verbal Analysis of English Novel, Routledge & Kegan Paul, London, 1970. (Introduction-ix
4. Lodge, David (ed.): Modern Criticism and Theory: A Reader, London, Longman, 1991. P-22
5. Jakobson R., Closing Statement: Linguistics and Poetics, in Style in Language (ed. Thomas Sebeok), 1960, P-35
6. भर्तृहरि: वाक्य पदीय (टीकाकार: सूर्यनारायण शुक्ल) चौखम्बा, वाराणसी, 1939. ब्रह्मकांड, 123
7. मैनेजर पाण्डेय: साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, 1989, पृ. 260


◆◆◆

**पृष्ठ 27 का शेष**

7. वही, पृ. 12
8. वही, पृ. 13
9. वही, पृ. 77
10. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सलाम, कहानी संग्रह, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2004, नई दिल्ली, पृ. 13
11. वही, पृ. 101
12. वही, पृ. 102
13. ओमप्रकाश वाल्मीकि, घुसपैठिये, कहानी संग्रह, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2003, नई दिल्ली, पृ.18
14. वही, पृ. 29
15. वही, पृ. 34
16. जूठन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृ. 8
17. वही, पृ. 11-12
18. डॉ. अंबेडकर संपूर्ण वांग्मय खंड-9, कल्याण विभाग, भारत सरकार, 1995, पृ. 49
19. ओमप्रकाश वाल्मीकि, मुख्यधारा और दलित साहित्य, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 16
20. वही, पृ. 25
21. वही, पृ. 16
22. वही, पृ. 25
23. वही, पृ. 50
24. वही, पृ. 147
25. वही, पृ. 116
26. वही, पृ. 51
27. वही, पृ. 34
28. वही, पृ. 34
29. वही, पृ. 36
30. वही, पृ. 50
31. वही, पृ. 52
32. वही, पृ. 80
33. वही, पृ. 102
34. वही, पृ. 102

◆◆◆